डॉ सुरेश सिसेदिया

शिक्षा का वर्तमान स्वरूप

वर्तमान युग उच्च शिक्षा की आधारशिला पर टिका हुआ है। यह समय ज्ञान-विज्ञान के युग के रूप में जाना जाता है। मात्र २०वीं शताब्दी में शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में जितना विकास हुआ है उतना विकास विगत सौ वर्षों में नहीं हुआ होगा और इस गति को देखते हुए कहा जा सकता है कि आने वाले दस वर्षों में ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रगति होना सम्भावित है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। बच्चे के जन्म लेने के साथ ही वर्तमान में अभिभावक उसके आवास – भोजन से अधिक चिंतित उसकी शिक्षा को लेकर रहते हैं। प्राचीन समय में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का और उसमें सद्गुणों का विकास करना रहा था किन्तु वर्तमान में तो शिक्षा के मूल उद्देश्य से ही हम प्रायः भटक चुके हैं। आज शिक्षा का अर्थ व्यक्ति को जीवन और जगत के सम्बन्ध की जानकारियाँ भर देना मात्र रह गया है। प्राचीन समय में शिक्षा को जीविकोपार्जन के साधन से नहीं जोड़ा जाता था किन्तु आज शिक्षा आजीविका का साधन बनकर रह गई है। तीव्र गति से इसका व्यवसायीकरण हुआ है हो रहा है, इससे ऐसा विदित होता है कि हम शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों से ही भटक रहे हैं।

शिक्षा का वर्तमान स्वरुप :

वर्तमान शिक्षा पद्धति छात्रों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास से संदर्भित नहीं होकर मात्र उसकी आजीविका का साधन बनकर रह गई है। आज शिक्षक और शिक्षार्थी के लिए शिक्षा का स्वरूप केवल जीविकोपार्जन का साधन बनने मात्र तक सीमित रह गया है। वर्तमान पाठ्यक्रम में जो विषयवस्तु है वह भी व्यक्ति को डॉक्टर, इंजीनियर, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, प्रशासनिक अधिकारी आदि की शैक्षणिक योग्यता अर्जित कराने तक सीमित हैं किन्तु उस सम्पूर्ण पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा का कहीं कोई प्रावधान नहीं है। वर्तमान शिक्षा पद्धति के माध्यम से विद्यार्थी को उच्च शिक्षा देकर भी हम एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं शान्तिप्रिय समाज की रचना नहीं कर सके हैं।

स्कूली शिक्षा का स्वरूप :

बच्चा जन्म से लेकर विद्यालय स्तर तक जहाँ अध्ययन करता है वहाँ की स्थिति यह है कि अभिभावक बच्चे को स्कूल में प्रवेश दिलाने और उसकी फीस की व्यवस्था कर देने मात्र में अपनी जिम्मेदारी की इतिश्री मान लेते हैं। वह कभी यह जानने की कोशिश ही नहीं करते हैं कि स्कूल में बच्चा किन साथियों की संगति में रहता है, उसके शिक्षक उसे पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त कोई नैतिक अथवा चारित्रिक शिक्षा देते भी हैं अथवा नहीं? इसी के समानान्तर जब हम इसकी दूसरी ओर देखते है तो अधिकांश शिक्षकों का स्तर भी आज नैतिकता और चारित्र के धरातल पर टीका हुआ प्रतीत नहीं होता क्योंकि शिक्षकों के चयन का आधार वर्तमान में नैतिक मूल्यों की अपेक्षा विद्यालयों के संचालकों की मेहरबानी, प्रधानाध्यापक की चाटुकारिता और राजनीति के प्रभाव से होने लगा है। परिणाम स्वरूप ज्ञान और चारित्र से शून्य किन्तु चाटुकारिता में चतुर व्यक्ति आज शिक्षक वर्ग के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। अत: उनसे बच्चों के चरित्र निर्माण की विशेष अपेक्षाएं नही रखी जा सकती हैं। मेरे लेखन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि सम्पूर्ण शिक्षक वर्ग चारित्र शून्य है किन्तु व्यवहार में शिक्षकों को आचरण की जो बहुलता हम देख रहे हैं उसी आधार पर मेरा यह सोचना है अन्यथा चरित्रनिष्ठ और जीवनदर्शन शिक्षा को समर्पित शिक्षकों का सर्वथा अभाव भी समाज में नहीं है ऐसे चुनिन्दा चरित्रवान शिक्षको के कारण ही आज भी शिक्षकों को वन्दनीय एवं पूजनीय मानकर गरिमा प्रदान की जाती है किन्तु बहुसंख्यक शिक्षकों को अपने ज्ञान के साथ ही स्वयं में चारित्रगुणों को विकसित करने की आज महती आवश्यकता है।

महाविद्यालयी शिक्षा का स्वरूप :

महाविद्यालयी शिक्षा का स्वरूप तो और अधिक विकृत होता जा रहा है। अधिकांश महाविद्यालयों में छात्र इसलिए नहीं पढ़ रहा है कि उसे पढ़ाई पूरी कर संस्कारवान अथवा चारित्रवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनना है उसका लक्ष्य तो येन-केन-प्रकारेण डिग्री प्राप्त कर आजीविका से जोड़ा जा रहा है। महाविद्यालयों में मुश्किल से प्रतिदिन ३-४ घण्टे का अध्ययन होता है और उसमें हम कल्पना करें कि विद्यार्थी ज्ञानवान और चरित्रवान बनेगा तो हमारी ये कल्पना मात्र कल्पना ही है यथार्थ नहीं। परीक्षा पूर्व प्रश्न-पत्रों का बाजार में आ जाना, बिना योग्यता और विषय का ज्ञान प्राप्त किये ही शिक्षकों को रुपये देकर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना, रुपये देकर पीएच.डी के शोध प्रबन्ध तक लिखवाना, यह सब शिक्षा का विकृत स्वरूप है जो वर्तमान में रक्तबीज की तरह बढ़ रहा है। हम सब इससे भलीभांति परिचित हैं। होना तो यह चाहिए कि महाविद्यालय स्तर की शिक्षा अर्जित करने के पश्चात् विद्यार्थी के चेहरे से ही छलकना चाहिए कि वह कितना ज्ञानवान और क्रियावान है किन्तु आज ऐसा कुछ दिखाई नहीं देता। अत: हमें शिक्षा के वर्तमान स्वरूप के साथ नैतिक शिक्षा को जोड़ने का उपक्रम अवश्य करना चाहिए।

शिक्षा का व्यवसायीकरण :

प्राचीन समय में शिक्षा कभी भी आय का स्रोत नहीं रही। शिक्षण संस्थानों की स्थापना चाहे किसी व्यक्ति ने की, किसी समाज ने की अथवा शासन की ओर से की गई हो, सभी उसमें शैक्षणिक गतिविधियों के लिए धन का व्यय करते थे। धनाढ्य व्यक्ति अथवा सम्पन्न समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् रचनात्मक कार्यों में धन खर्च करने के लिए शिक्षा दान को उचित माध्यम मानते थे और इसी कारण जगह-जगह स्कूलों, महाविद्यालयों, धार्मिक पाठशालाओं, विविध शोध संस्थानों आदि की स्थापना उनके द्वारा की जाती थी और बिना अर्थ लाभ के हमेशा अपनी ओर से कुछ न कुछ धन उसमें विनियोजित करने की ही उनकी भावना रहती थी। शासन के आय के स्रोत अन्य थे किन्तु शिक्षा कभी भी शासन की आय का स्रोत नहीं थी, वर्तमान में परिस्थितियाँ सर्वथा इसके प्रतिकूल दिखाई देती हैं। पहले उदारमना दानी महानुभाव शिक्षण संस्थानों की स्थापना करते थे आज उद्योगपति शिक्षण संस्थानों की स्थापना कर रहे हैं। पूंजीपतियों को आज शिक्षा सबसे बड़ा उद्योग दिखाई दे रहा है। वे अल्प समय में जितनी धन सम्पदा अन्य उद्योगों से अर्जित नहीं कर सकते उससे अधिक धन-सम्पदा अर्जित करने का माध्यम उन्होंने शिक्षा संस्थानों की स्थापना कर उद्योग के रूप में उसका संचालन कर सम्पत्ति अर्जन करना बना रखा है।

शासन द्वारा भी पूर्व में शिक्षा, चिकित्सा आदि पर धन व्यय किया जाता था किन्तु आज शासन ने भी शिक्षा को सम्पत्ति अर्जन का माध्यम बना लिया है और इतनी ऊँची फीस स्कूलों, महाविद्यालयों तथा विविध तकनीकी पाठ्यक्रमों की कर दी गई है कि सामान्य परिवार के बच्चों के लिए ऐसी शिक्षा ग्रहण करना अब सहज नहीं रहा है।

समाज में आज भी ऐसे शिक्षा प्रेमी और उदारमना व्यक्ति मौजूद हैं जो अपने पुरुषार्थ से अर्जित सम्पत्ति का विनियोजन बच्चों को उच्च शिक्षा और नैतिक शिक्षा देने पर करना चाहते हैं। आवश्यकता इस बात है कि हम वर्तमान विकृत शिक्षा पद्धति से परे एक सुसंस्कारित और चरित्र निर्माण करने वाली शिक्षा पद्धति को विकसित करें और तदनुरूप शिक्षण संस्थानों की स्थापना करें।

प्रतिभा पलायन की समस्या :

हमारे देश में प्रतिभाओं की कोई कमी नहीं है। हम अपने चहुंओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि हमारे कई प्रतिभावान विद्यार्थी जो आज यहाँ शिक्षा के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किये हुए है, विदेशों में उनकी योग्यता की परख करते हुए तुरन्त ही उन्हें मोटी रकम देकर अपने यहां सेवा देने हेतु नियुक्त कर लिया जाता है इस प्रकार प्रतिभा पलायन को रोकना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि उन प्रतिभाओं को उनकी प्रतिभा के अनुरूप कार्य करने का समुचित अवसर यहां अपने देश में दें। यदि ऐसा होता है तो हमारी प्रतिभाओं के माध्यम से निर्मित तकनीकी जिसको हम विदेशों से आयातित करते हैं, वह नहीं करनी पड़ेगी और हम अपनी ही प्रतिभाओं से तकनीकी क्षेत्र में भी गुणवत्ता के मापदण्ड प्राप्त कर देश की समृद्धि और विकास में सहयोगी बन सकेंगे।

प्राचीन समय में व्यक्ति आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा ग्रहण करता था और वह शिक्षा उसे अपने धर्माचार्य से बिना कुछ धन व्यय किये सहज ही प्राप्त हो जाती थी किन्तु वर्तमान व्यावहारिक शिक्षा जिसका सीधा संबंध व्यक्ति को रोजगार दिलाने से है बिना धन के व्यय किये प्राप्त नहीं हो सकती। आज गुरु और शिष्य के बीच जो सम्बन्ध हैं उसमें आदर का भाव प्राय: लुप्त हो चुका है क्योंकि इन दोनों के बीच पढ़ने और पढ़ाने के लिए राशि को लेकर सौदेबाजी होती है और जहाँ राशि को लेकर सौदेबाजी होती हो वहां कोई गुरु यह अपेक्षा करे कि शिष्य मुझे आदर और सम्मान देगा तो यह उसकी भूल है क्योंकि गुरु को आदर और सम्मान उस काल में दिया जाता था जब गुरुकुल पद्धति थी। विद्यार्थी आश्रम में रहकर अपने गुरु से नि:शुल्क शिक्षा अर्जित करता था। वर्तमान में गुरु-शिष्य सम्बन्धों में जो गिरावट आई है उसके लिये वर्तमान शिक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्धति और शिक्षा को जीविकोपार्जन का साधन मानना दोनों ही समान रूप से जिम्मेदार हैं। गुरु-शिष्य की चर्चा करते हुए जैन साहित्य में कहा गया है कि नाना प्रकार के परिषहों को सहन करने वाले, लाभ-हानि में सुख-दु:ख रहित रहने वाले, अल्प इच्छा में संतुष्ट रहने वाले, ऋद्धि के अभिमान से रहित, उस प्रकार सेवा सुश्रुषा में सहज तथा गुरु की प्रसंशा करने वाले ऐसे ही विविध गुणों से सम्पन्न शिष्य की कुशलजन प्रशंसा करते हैं। समस्त अहंकारों को नष्ट करके जो शिक्षित होता उसके बहुत शिष्य होते हैं किन्तु कुशिष्य के कोई भी शिष्य नहीं होते। शिक्षा किसे दी जाए इस सम्बन्ध में जैन साहित्य में कहा गया है कि किसी शिष्य में सैकड़ों दूसरे गुण क्यों न हो किन्तु उसमें यदि विनय गुण नहीं है तो ऐसे पुत्र को भी वाचना नहीं दी जाए फिर गुण विहीन शिष्य को तो क्या? अर्थात् उसे तो वाचना दी ही नहीं जा सकती। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक में ज्ञान गुण की चर्चा करते हुए जो विवेचन किया गया है वह दृष्टव्य है। वहां गया है कि वे पुरुष धन्य हैं जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट अतिविशिष्ट ज्ञान को जानने हेतु समर्थ नहीं है फिर भी जो चारित्र से सम्पन्न है वस्तुत: वे ही ज्ञानी हैं। (गाथा ६८)

ज्ञान से रहित क्रिया और क्रिया से रहित ज्ञान तारने वाला अर्थात् सार्थक नहीं होता जबकि क्रिया में स्थिर रहा हुआ ज्ञानी संसाररूपी भवसमुद्र को तैर जाता है (गाथा ७३)। आगे यह भी कहा है कि जिस प्रकार शस्त्र से रहित योद्धा और योद्धा से रहित शस्त्र निरर्थक होता है उसी प्रकार ज्ञान से रहित क्रिया और क्रिया से रहित ज्ञान निरर्थक होता है (गाथा ७५)।

सम्यक् चारित्र की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि सम्यक् दर्शन से रहित व्यक्ति को समय्क् ज्ञान नहीं होता है और सम्यक् ज्ञान से रहित व्यक्ति को सम्यक् चारित्र नहीं होता है तथा सम्यक् चारित्र से रहित व्यक्ति का निर्वाण नहीं होता है (गाथा ७६)। इस प्रकार जैन साहित्य में व्यक्ति की योग्यता का मापदण्ड उसके जीवन मूल्यों में नैतिकता और सदाचार से रहा है जिसकी आज महती आवश्यकता है।

जैन शास्त्रों में वर्णित गुरु-शिष्यों का यह सम्बन्ध उच्च नैतिकता के धरातल पर आधारित है आज न तो ऐसे गुरु उपलब्ध हैं और न ही ऐसे शिष्य। समाज और शासन को इस दिशा में ईमानदारी पूर्वक प्रयास करने चाहिये कि बच्चों को व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही नैतिक शिक्षा भी देने की व्यवस्था की जाये। निष्ठावान शिक्षकों का सम्मान भी गरिमा के साथ किया जाये और समाज में उन्हें आर्थिक समृद्धि उपलब्ध कराते हुए उच्च स्थान प्रदान किया जाये तो शिक्षा के स्वरूप में सुधार के अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रतिभा पलायन और शिक्षा के व्यावसायीकरण को रोकने के लिए हमें इमानदारी पूर्वक प्रयास करने होंगे तभी हम एक सभ्य, सुसंस्कृत और नैतिक समाज की रचना कर सकेंगे।

सहनिदेशक,

आगम-अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर (राज)

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org